चेतन और जड़

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दो तत्वों से बना है–चेतन और जड़। दोनों के गुण धर्म अलग–अलग हैं। चेतन और जड़ के मिश्रण से ब्रह्माण्ड चलता है। जिसमें वर्ण, गन्ध, स्पर्श और रस होता है वह जड़ है। जड़ गलन मिलन धर्मा है। चेतन तत्व गतिशील है। इसमें संवेदना होती है, हलन–चलन की क्रिया होती है। यह सूक्षम है। इसे किसी भी यन्त्र से देखा नहीं जा सकता। जड़ तत्व परमाणुओं का समुच्चय है, जड़ साधन है साध्य नहीं। शरीर जड़ और चेतन का मिश्रण है। शरीर पंचभूतात्मक है। पंचभूत भौतिक पदार्थ हैं। मृत्यु के बाद शरीर से चेतन तत्व अलग हो जाता है। शरीर को जला देने के बाद भौतिक तत्व पंचभूतों में मिल जाते हैं।

शरीर को चलाने वाला आत्मा है। आत्मा के बिना इसका अस्तित्व नहीं है। चेतन अमूर्त्त है। चेतना की उपस्थिति से शरीर का सम्पूर्ण क्रियाकलाप होता है। चेतना में सुख–दुःख की अनुभूति होती है, जो अनुभूति करता है, जो संवेदन करता है वह चेतन है। शरीर के जितने सेल्स है वह सब आत्मा के कारण गतिशील रहते हैं। सम्पूर्ण जीवित प्राणियों को रहने के लिए स्थान चाहिए। मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति समाज से होती है। समाज का जीवन सापेक्ष जीवन है। यह वाइब्रेशन से चल रहा है। इसकी एनर्जी सदैव एक सी रहती है। एनर्जी कभी नष्ट नहीं होती केवल रूपान्तरण होता है।

जड़ और चेतन का मिश्रण है। जड़ ओर चेतन दोनों विजातीय द्रव्य हैं। आत्मा चेतन और अरूप है। शरीर अचेतन और सरूप। दोनों का संबंध कैसे हो सकता है? संसारी आत्मा सूक्ष्म और स्थूल इन दो प्रकार के शरीरों से आवेष्टित रहता है। एक जन्म से दूसरे जन्म में जाने के समय स्थूल शरीर छूट जाता है, सूक्ष्म शरीर नहीं छूटता। सूक्ष्म शरीर धारी जीवों को एक के बाद दूसरे–तीसरे स्थूल शरीर का निर्माण करना पड़ता है। सूक्ष्म शरीर धारी जीव ही दूसरा शरीर धारण करते हैं। इसलिए अमूर्त्त जीव मूर्त्त शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं यह प्रश्न ही नहीं उठता। संसारी दशा में जीव कथंचित् मूर्त्त भी है। उसका अमूर्त्त रूप विदेह दशा में प्रगट होता

है। संसारी दशा में जीव और पुद्गल का कथंचित् सादृश्य होता है। शरीर और चेतना दोनों भिन्न धर्मक है। फिर भी इनका अनादि संबंध है। चेतन और अचेतन चैतन्य की दृष्टि से भिन्न हैं। इसलिए वे एक नहीं हो सकते।

चेतन शरीर का निर्माता है। शरीर उसका अधिष्ठान है। इसलिए दोनों पर एक दूसरे की क्रिया–प्रतिक्रिया होती है। शरीर की रचना चेतन विकास के आधार पर होती है। चेतना विकास के अनुरूप शरीर की रचना होती है। शरीर रचना के अनुरूप चेतना की प्रवृत्ति होती है। शरीर निर्माण काल में आत्मा उसका निमित्त बनती है। आत्मा शरीर से सर्वथा भिन्न नहीं होती इसलिए आत्मा की परिणति का शरीर पर और शरीर की परिणति का आत्मा पर पड़ता है। देहमुक्त होने के बाद आत्मा पर शरीर का कोई प्रभाव नहीं होता, किन्तु दैहिक स्थितियों में जकड़ी हुई आत्मा के क्रियाकलाप में शरीर सहायक और बाधक बनता है।

जड़ पदार्थ में हलन–चलन नहीं होता। जैसे पत्थर लकड़ी या अन्य निर्जीव पदार्थ एक जगह रखे जाते हैं तो उसमें गति नहीं होती है। जड़ पदार्थ चेतन भाव से रहित होता है, इसलिए उसे जड़ कहा जाता है। वस्तु के हलन–चलन को गतिशीलता कहा जाता है। धर्म आत्मा का लक्षण है, गुण है। जो धारण करता है या धारण करने की शक्ति जिसमें होती है वह धर्म है। गुणों का आचरण में आना आवश्यक है। धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत भावों की शुद्धता, मन की निर्मलता और सात्विक विचार का अधिक महत्व है। धर्म मूलतः किसी वस्तु का सहज गुण है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ हैं, उन सबका स्वाभाविक धर्म होता है। जब पदार्थों में विकृति उत्पन्न की जाती है तो उनके गुण धर्म भी बदल जाते हैं। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है। यह अपने स्वरूप में चैतन्य युक्त है। शेष जितने भी पदार्थ हैं, वे भौतिक तत्व हैं। उन पदार्थों में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है।

आत्मा और जड़ का जब संयोग होता है तो जड़ पदार्थ भी आत्मवत प्रतीत होने लगता है। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। शरीर से जब आत्मा का संयोग होता है तो जड़ शरीर भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य किये जाते हैं। मूलतः आत्मा के शुद्धि और अशुद्धि का कोई प्रश्न नहीं है। शरीर में शुद्धता और अशुद्धता देखी जाती है। इसी को ध्यान में रखकर यह बात कही गयी है कि धर्म आत्मा को शुद्ध करता

है। आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है।यह संसार जड़तत्व और चेतनतत्व दो तत्वों से मिलकर बना हुआ है। जड़तत्व भौतिकतत्व है और आत्मतत्व आध्यात्मिक तत्व है। मानव जीवनभर पंचेन्द्रियों से जड़तत्वों का ही दर्शन करता है और उसी के साथ संबंध स्थापित किये रहता है। उसके नष्ट होने पर उसे दुःख होता है। जब उसकी वृत्ति ऊर्ध्वमुखी होती है, तब वह आत्मतत्व की ओर गति करता है। आत्मतत्व अविनाशी तत्व है और भौतिक तत्व विनाशशील है।